AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक दर्शन

ORIGINAL ARTICLE

Author

आलोक कुमार बाउरी

शोधार्थी

शिक्षा विभाग, मानविकी एवं

सामाजिक विज्ञान संकाय

साई नाथ विश्वविद्यालय

राँची, झारखण्ड, भारत

शोध सार

शिक्षा दर्शन का मुख्य कृत्य शैक्षिक उद्धेश्यों के विशय में विचार करना है। आज हम साक्ष्य (उद्देश्यों) को भूलते जा रहे हैं और इस आधुनिक युग के साधनों की ओर अधिकाधिक खिचते जा रहे हैं। विद्यालय, भवन, मेज कुर्सी, अध्यापन विधियाँ, समय, विभाजन चक्र, पाठ्योजना आदि अधिक महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं। शिक्षा दर्शन का कृत्य छात्र और अध्यापक को साधनों की इस भूल–मूलैया में भटकने से बचाना है और शिक्षा के उद्देश्यों की ओर उनको उन्मुख करना है। ऐसे में भारतीय शिक्षा को इस संकट से उबारने के लिए टैगोर शिक्षा दर्शन ने भारतीय शिक्षा को एक व्यापक व गतिशील रूप दिया है। टैगोर का विश्वास था कि प्रकृति, मानव तथा अर्न्तराष्ट्रीय सम्बन्धो में परस्पर मेल एवं प्रेम है, अतः सच्ची शिक्षा के द्वारा वर्तमान की सभी वस्तुओं में मेल और प्रेम की भावना विकसित होनी चाहिए। टैगोर के समय की क्रमबद्ध तथा निष्क्रिय शिक्षा का समाज की आवश्यकताओं से मेल नहीं था। अतः उन्होंने तत्कालीन शिक्षा का घोर विरोध किया और बताया कि सच्ची शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिए कि वह बालक को जीवन तथा विश्व के स्वर के मिलन से पूर्णतया अवगत कराये तथा दोनो के मेल के मध्य संतुलन स्थापित करें। टैगोर ने इस आदर्श को अपने विश्व भारती में पूरा किया।

मुख्य शब्द

शिक्षादर्शन, प्रकृतिवाद, मानवतावादी, दृष्टिकोण, रविन्द्रनाथ टैगोर.

प्रस्तावना

टैगोर का विश्वास था कि शिक्षा प्राप्त करने समय बालक को स्वतंत्र वातावरण मिलना परम आवश्यक है। उन्होने बालक की स्वतंत्रता तथा प्राकृतिक शिक्षा पर बल अवश्य दिया पर समाज सुधारक होने के नाते उन्होने शिक्षा को समाज की जीवन दायिनी धारा माना तथा समाज सेवा का साधन माना। वे विश्व बन्धुत्व में विश्वास करते थे अतः समाज से उनका तात्पर्य संकुचित न होकर विश्व समाज था। वे कहते थे कि शिक्षा को जीवन के अनुसार होना चाहिए, यदि शिक्षा वास्तविक जीवन से अलग हो जाएगी तो इससे समाज को कोई लाभ न हो सकेगा। इस दृष्टि से शिक्षा को प्रकृति तथा मनुष्य से निरन्तर सम्बन्धित होना चाहिए तथा उसकी व्यवस्था इन दोनों की संगत में ही होनी चाहिए। टैगोर ने स्वयं लिखा है: ''प्रकृति के पश्चात् बालक को सामाजिक व्यवहार की धारा के सम्पर्क में लाना चाहिए।''

टैगोर का विश्वास था कि ईश्वर एक है तथा उसने मनुष्य की प्रकृति की रचना की है। वे कहते थे कि हम

उसमें तथा उसके द्वारा मनुष्य के बीच तथा मनुष्य और प्रकृति के बीच एकत्व की स्पष्ट झलक देखते हैं। अतः उन्होने मनुष्य और प्रकृति के बीच सामन्जस्य पर बल दिया। ध्यान देने की बात है कि टैगोर मानवतावादी भी थे। उन्होने मानव को ईश्वर का रूप माना है और उसकी विभिन्न शक्तियों के सामन्जस्यपूर्ण विकास का समर्थन करते हुए मानव और मानव के बीच पाये जाने वाले विभाजन अथवा मतभेद की निंदा करते हुए आपसी एकता पर बल दिया।

टैगोर ने अपनी शिक्षा सम्बन्धी सोच को आगे बढ़ाते हुए विश्व भारती की स्थापना की। साहित्य कला दर्शन के क्षेत्र में उनकी अनुपम उपलब्धियों ने भारत के मस्तिष्क को ऊँचा कर दिया। टैगोर का संबंध ऐसे परिवार से था, जो सब प्रकार से प्रगतिशील विचारों और कार्यों तथा विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक आन्दोलन का केन्द्र था। उस परिवार के सदस्यों में प्रायः सभी अच्छी बातों के जानकार थे, जैसे दर्शन, विज्ञान, संस्कृति, कविता व कला, संगीत, नाटक राष्ट्रनिर्माण, समाज सुधारक, व्यापार, व्यवसाय और आध्यात्मिक अनुभव। टैगोर में ऐसी तीव्र और विविध ग्रहण शक्ति थी कि उन्होने इन सभी बातों का बड़ी सरलता से ग्रहण करके अपना लिया।

रवीन्द्रनाथ भारतीय पुर्नजागरण और स्वतन्त्रता के कवि थे, उन्होंने आधुनिक भारत के आदर्शों, इच्छाओं, आकांक्षाओं तथा लालसाओं को स्पष्टता प्रदान की। उन्हें भारत के अतीत पर गर्व था। वे कहा करते थे कि भारत के गगनमण्डल में ही ऊपा की प्रथम रश्मि प्रस्फुटित हुई थी और इसी देश के गृहों तथा वनों में जीवन एक श्रेष्ठतम आदर्शों का निरूपण किया गया था। विख्यात राष्ट्रगीत ''जन गण मन'' की रचना उन्होंने की थी। उनके गीतों तथा सन्देशों ने सामाजिक तथा राजनीतिक कार्यकर्ताओं को प्रेरणा दी इसलिए यद्यपि उन्होंने स्वतन्त्रता के घमासान राजनीतिक युद्ध में भाग नहीं लिया, फिर भी वे भारतीय स्वतन्त्रता के एक ऋषि के रूप में माने जाते थे।

रवीन्द्रनाथ माण्डूक्य उपनिशद् के ''सत्यम् शिवम् और अद्वैत'' की धारणा के अनुयायी थे। वे एकेश्वरवादी भी थे, किन्तु उनमें हिब्रु एकेश्वरवादियों की सी कट्टरता नहीं थी। उन्हें अपने पिता तथा ब्रह्म समाज के वातावरण से जो एकेश्वरवादी आस्था विरासत में मिली थी, वह सर्वेश्वरवादी एकत्ववाद के तत्वों के संयोग से अधिक पुष्ट हो गयी थी। कुछ अंशों में वे सौन्दर्यात्मक, अखण्डात्मक एकत्ववादी थे, और उन्हें परमात्मा की उच्चतम सृजनशीलता में विश्वास था। वे यह भी मानते थे कि परमात्मा प्रेम को पूर्णता है। अपनी परवर्ती रचनाओं में उन्होंने परमात्मा को परम पुरुष माना और परम पुरुष की धारणा में उनकी गहरी आस्था हो गयी। इस प्रकार उन्होंने आध्यात्मिक सत् की धारणा में गहरा सगुणात्मक पुट लगा दिया।

टैगोर ने अपने जीवन दर्शन के विकास के साथ–साथ शिक्षा दर्शन का भी विकास किया। अतः उनके जीवन दर्शन के विकास में जिन तत्वों का प्रभाव पड़ा उन्हीं तत्वों का प्रभाव उनके शिक्षा–दर्शन के विकास में भी पड़ा। टैगोर के शिक्षा दर्शन के निर्माण में उनके परिवार का विशेश प्रभाव पड़ा जो कि सभी प्रकार के प्रगतिशील विचारों एवं कार्यों और विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक, धार्मिक आन्दोलनों का केन्द्र था। टैगोर ने अपनी तीव्र एवं विविध ग्रहण शक्ति का प्रयोग करके ''स्य–शिक्षा'' द्वारा ही शिक्षा एवं उसके रहस्यों का अनेक प्रकार से अनुभव तथा ज्ञार्नाजन किया। श्री एस. सी. सरकार ने इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए लिखा है ''उन्होंने स्वयं ही शिक्षा के उन सभी सिद्धान्तों की खोज की जिनका आगे चलकर उन्हें अपने लिए प्रतिपादन करना था और अपने शान्ति निकेतन के प्रयोग में काम में लाना था।'' परिवार के प्रभाव के अतिरिक्त उन पश्चिमी देशों के शिक्षा–शास्त्रियों, विशेष तौर से रूसो, फ्रोबेल, डीवी (Dewey) तथा पेस्तालॉजी (PestalozZi) के विचारों का भी प्रभाव पड़ा जिनका वे 1921 में शान्ति निकेतन की स्थापना के पूर्व अध्ययन कर चुके थे। इसके अतिरिक्त टैगोर ने अपनी तीव्र बुद्धि द्वारा प्राकृतिक एवं सामाजिक विज्ञानों का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था जिनका कि उनके शिक्षा–दर्शन के निर्माण में पर्याप्त प्रभाव पड़ा। टैगोर ने अपने शिक्षा दर्शन के निर्माण में अपने समय की शिक्षा प्रणाली के दोशों का भी ध्यान में रखा। इस प्रकार टैगोर के शिक्षा दर्शन के विकास में अनेक महत्वपूर्ण बातों का प्रभाव पड़ा।

हम टैगोर के शिक्षा–दर्शन का अध्ययन कर पाते हैं कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक की जन्मजात शक्तियों का विकास कर उसके व्यक्तित्व का चतुर्मुखी तथा सर्वांगीण विकास करना होना चाहिए। शिक्षा का कार्य केवल बालकों को अच्छा क्लर्क, निपुण किसान, शिल्पी या वैज्ञानिक बना देना नहीं है बल्कि उन्हें अनुभव की पूर्णता द्वारा पूर्ण मनुष्य के रूप में विकसित करना भी है।

बालकों को प्रकृति के घनिष्ठ सम्पर्क में रहकर शिक्षा देने की व्यवस्था होना चाहिए, क्योंकि उन्हें प्रकृति के साथ घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करने में आनन्द का अनुभव होता है। विद्यार्थियों का नगरों की अनैतिकता, भीड़ और गन्दगी से दूर प्रकृति के शान्त तथा सायेदार एकान्त स्थान में रखना चाहिए। शिक्षा राष्ट्रीय होनी चाहिए एवं उनमें भारत के भूत एवं भविष्य का ध्यान रखना चाहिए। भारतीय शिक्षा एवं भारतीय विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में भारतीय दर्शन के प्रमुख विचारों को स्थान दिया जाना चाहिए। सभी विद्यार्थियों को भारतीय विचारधारा एवं भारतीय समाज की पृष्ठभूमि का स्पष्ट रूप से ज्ञान करना चाहिए। प्रत्येक बालक एवं बालिका में संगीत, चित्रकला और अभिनय की योग्यताओं का विविध पूर्वक विकास करना चाहिए। मातृ–भाषा शिक्षा का माध्यम होना चाहिए, क्योंकि इनके द्वारा ही सम्पूर्ण राष्ट्र को अच्छे प्रकार से शिक्षित किया जा सकता है। सच्ची शिक्षा बालको को स्वतन्त्र प्रयासों से ही प्राप्त की जानी चाहिए। अनन्त मूल्यों की प्राप्ति विदेशी भाषा से सम्भव नहीं है. अतः मातृ–भाषा का प्रयोग करना चाहिए। विद्यार्थियों को पुस्तकों के बजाय प्रत्यक्ष स्रोतों से ज्ञान प्राप्त करने का अवसर देना चाहिए। बालकों को उत्तम मानसिक भोजन प्रदान करना चाहिए जिससे मस्तिष्क का विकास विचारों के वायुमण्डल में हो।

शिक्षण पद्धति का आभार जीवन को वास्तविक बातें तथा प्राकृतिक होनी चाहिए। विद्यार्थियों के सामाजिक आदर्शों, परम्पराओं, प्रथाओं और रीति–रिवाजों को पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाना चाहिए। बालकों को इस प्रकार की शिक्षा दी जाये जो उन्हें 'अध्यात्मवाद' की ओर अग्रसर होने का अवसर प्रदान करे। बालक का जन्म प्रकृति एवं मनुष्य दोनों के संसार में होता है। अतः दोनों संसार के लिये उनको आकर्षण बनाये रखना चाहिये। शिक्षा द्वारा बालकों में उच्च कोटि की ''धार्मिक भावना'' जागृत की जानी चाहिए जिससे उनमें मानवता का कल्याण करने की क्षमता का विकास हो। शिक्षा ऐसी हो जो बालकों में पर दुःख कातरता, परोपकारिता, सहिष्णुता इत्यादि गुणों का विकास करे। शिक्षा द्वारा बालकों को ''सत्यम् शिवम् सुन्दरम्'' ऐसे मूल्यों का साक्षात्कार करना चाहिए। विभिन्न विज्ञानों का अध्ययन देश में अपनी नींव तभी जमा कर सकता है, जबकि जन–साधारण को उनका ज्ञान हो जाये किन्तु यह तभी सम्भव है जब उसकी मातृ–भाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाये। साथ ही भारत में जन–साधारण को तभी शिक्षित किया जा सकता है, जबकि प्रारम्भिक स्कूलों को पुनः जीवित किया जाये और शिक्षा को गतिशील एवं सजीव तभी बनाया जा सकता है, जबकि उसका आधार व्यापक हो और समुदाय के जीवन से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध हो। भारत में शिक्षा की कोई भी सच्ची तथा लाभप्रद राष्ट्रीय प्रणाली विदेशी नमूने की नकल पर आधारित नहीं की जा सकती तथा राष्ट्रीय शिक्षा का तात्पर्य उस शिक्षा से है जिसका राष्ट्र के जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध हो और जो देशवासियों के संचित मूल्यों, परम्पराओं, प्रथाओं तथा प्रिय आदर्शों से स्वाभाविक रूप से विकसित हो।

निष्कर्ष

वस्तुतः हम जानते हैं कि सदियों की दासता के कारण भारत में दो प्रकार की संस्कृति पनप रही है और दूसरी भारत की आत्मा तक घुसती जा रही है। यह शिक्षा–दर्शन का कार्य है कि वह भारत को इस संकट से उबारे और मार्ग दर्शन करे। शिक्षा–दर्शन ही एक ऐसा विषय है जो शिक्षा विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दर्शन के बिना शिक्षा अधुरी है।

संदर्भ सूची

1. गुप्ता, रेनु (2014) *शिक्षा के सिद्धांत,* अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, पृ. 123–125।
2. माथुर, एस.एस. (2006) *शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार,* अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, पृ. 97–98।
3. सक्सेना, एन. आर. (2005) *स्वरुप शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत,* आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, पृ. 102–105।
4. पाण्डेय, राम शक्ल (2012) *शिक्षा के दार्शनिक सिद्धांत,* अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, 2012,पृ० 47–48.
5. रुहेला, एस. पी. (2014) *शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार,* अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, पृ. 78–79।
6. सिंह, श्याम (2015) *शिक्षा दर्शन,* ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 1056–106।

––==00==––